# स्वामी विवेकानन्द का शैक्षिक दर्शन

**राजेश कुमार यादव***

विवेकानन्द के जीवन–दर्शन में ही हमें उनके शिक्षा दर्शन की भी झलक मिलती है और यद्यपि उन्होंने शिक्षा पर विशेष रूप से कोई ग्रंथ नहीं लिखा, तथापि मनुष्य में परम सत्ता के गुणों की खोज करते हुये उन्होंने शिक्षा को 'अन्तर्निहित ज्ञान की पूर्णता की अभिव्यक्ति' बताया है। उनका कथन है कि ज्ञान को खोजने के लिये कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। वह तो व्यक्ति के अन्दर सदैव से विद्यमान है। अतः उसे केवल खोजने और उसका अनुभव करने की आवश्यकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित एवं उद्घाटित करते हुए कहा है कि भारत की निर्धनता का एक महत्त्वपूर्ण कारण अशिक्षा है। स्वामी जी तत्कालीन शिक्षा–प्रणाली से विशेष दुःखी थे। उनका मन्तव्य था कि उस समय की शिक्षा मनुष्य में कोई गुण उत्पन्न नहीं करती। वह मनुष्य बनाने वाली शिक्षा है ही नहीं। उसमें कोई तत्व की बात दी ही नहीं जाती। उस शिक्षा को स्वामी जी ने निषेधात्मक शिक्षा की संज्ञा दी है। अंग्रेजी शिक्षा–प्रणाली में निषेधों पर विशेष बल दिया जाता था। उसमें हाथ–पैर से काम न करने पर, मातृ भाषा का प्रयोग न करने पर, मौलिकता प्रदर्शित न करने पर बल था। फलतः उसमें मनुष्यत्व के गुणों का विकास नहीं करती है।[1] इस प्रकार विवेकानन्द ने मानव की शिक्षा के निम्न मुख्य आधार निर्धारित किये हैं –

**बालक के अन्दर ही विकास के साधन विद्यमान** – स्वामी विवेकानन्द का विश्वास है कि बालक स्वयं अपना विकास करने में सक्षम है। विकास की समस्त सम्भावनायें उसके अंदर उसी प्रकार विद्यमान हैं, जैसे पौधे के अन्दर वृक्ष के रूप में विकसित होने की क्षमता। शिक्षक का कार्य केवल उसे संकेत भर देना है, जिस प्रकार माली का कार्य पौधों को उचित खाद पानी देकर धूप, शीत, वर्षा और जानवरों से बचाना है, उसी प्रकार शिक्षक का कार्य केवल यह देखना है कि बालक अपनी बुद्धि और इन्द्रियों का सही उपयोग कर रहा है अथवा नहीं। पौधा स्वयं अपना विकास कर लेता है, माली उसका विकास नहीं करता। इसी प्रकार बालक भी स्वयं अपना विकास करने में सक्षम हैं। विवेकानन्द का कहना है

***शोधछात्र, शिक्षाशास्त्र उच्च शिक्षा और शोध संस्थान दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा धारवाड़–580 001**



कि कोई भी व्यक्ति दूसरे को शिक्षा नहीं दे सकता, क्योंकि समय और अवसर आने पर मनुष्य बड़े से बड़े सत्य को स्वयं जान लेता है और अन्त में स्वयं को शिक्षित करता है। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षक को बालक के विकास में सहायक माना है, उनके अनुसार यह सहायता प्रोत्साहन के रूप में होनी चाहिये, डर और डाँट–फटकार के रूप में नहीं, यहाँ तक कि उपदेश के रूप में भी नहीं। केवल उचित–अनुचित का ज्ञान उसे प्रेमपूर्वक देना चाहिए। उनका कहना है कि कुछ माता–पिता और शिक्षक केवल बच्चों को उनके दोष ही बताते रहते हैं जिससे वे निरूत्साहित हो जाते हैं, उनके अन्दर हीन भावना उत्पन्न हो जाती है और उनका स्वाभाविक विकास रूक जाता है।

**शिक्षा का लक्ष्य**–स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का आध्यात्मिक निर्माण होना चाहिए, क्योंकि उसकी मूल प्रवृत्ति आध्यात्मिक है। स्वामी जी ने तत्कालीन शिक्षा की आलोचना करते हुये कहा था कि इस शिक्षा द्वारा मनुष्य में मनुष्यत्व का विकास नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह शिक्षा केवल क्लर्क बनाने वाली है तथा अधिकाधिक सूचनाएँ प्रदान करने का साधन मात्र है। उनका कहना था कि यदि शिक्षा का अर्थ केवल सूचना प्राप्त करना है तो, कहा जा सकता है 'पुस्तकालय सबसे बड़े सन्त और सबसे महान् ऋषि है। स्वामी जी के अनुसार, अधिक सूचनाएँ एकत्रित हो जाने से मस्तिष्क में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसलिये यदि कोई व्यक्ति केवल पाँच सद्विचारों को आत्मसात् कर ले, और उनके अनुसार अपने चरित्र का गठन कर ले, तो वह उस व्यक्ति से अधिक शिक्षित होगा जिसे सारा पुस्तकालय कण्ठस्थ है।[2]

स्वामी जी के अनुसार जो शिक्षा–पद्धति व्यक्ति में आत्मविश्वास की भावना का विकास नहीं करती, मौलिक विचारों के लिये उसे प्रेरित नहीं करती, उसके चरित्र का निर्माण नहीं करती, उसे सिंह के समान शक्तिशाली नहीं बनाती तथा उसके अन्दर विश्व बन्धुत्व की भावना को जागृत नहीं करती उस शिक्षा को सार्थक नहीं कहा जा सकता। स्वामी विवेकानन्द के विचार में शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। यह पूर्णता कहीं बाहर से नहीं आती वरन् मनुष्य के भीतर ही छिपी रहती है। वेदान्त के अनुसार मानव आत्मा, सम्पूर्ण ज्ञान और शक्ति का अधिष्ठान–स्थल है, किन्तु उस पर अज्ञान का आवरण पड़ा रहता है, जैसे–जैसे यह आवरण हटता जाता है। अस्तु मनुष्य आत्मज्ञान के निकट आता जाता है।

**शिक्षा का पाठ्यक्रम** – स्वामी विवेकानन्द समन्वयवादी थे। अतः आत्मा–परमात्मा की एकात्मकता को जीवन का परम लक्ष्य मानते हुये भी उन्होंने

पाठ्यक्रम में केवल आध्यात्मिक विषयों को सम्मिलित नहीं किया। एक सच्चे वेदान्ती की भाँति उन्होंने स्वीकार किया कि यह मानव शरीर ही मोक्ष प्राप्त करने का दुर्लभ साधन है। अतः शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन सभी विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिये जिनसे शरीर रक्षा और शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। उदाहरण के लिये स्वामी जी ने धनोपार्जन हेतु वैज्ञानिक तथा प्राविधिक–शिक्षा को देने की सन्तुति की है जिससे व्यक्ति आत्मनिर्भर बन सके। साथ ही संसार के विकसित राष्ट्रों के समकक्ष बनने के लिये उन्होंने अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा को भी आवश्यक माना है। अतः आध्यात्मिक पाठ्यक्रम के द्वारा व्यक्ति में पूर्णता की चेतना जागृत करना आवश्यक है।

हमारा पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमें निषेधात्मकता न हो। हमें छात्रों के समकक्ष विधायक या भावात्मक विचार रखने चाहिए, न कि अभावात्मक या निषेधात्मक। राष्ट्र को सफल बनाने के लिये जिन–जिन विषयों को पढ़ाने की आवश्यकता हो, वे विषय अवश्य पढ़ाए जायें। वेदों का अध्ययन अति आवश्यक है। अतः उदात्त वैदिक मंत्रों की धनगर्जा द्वारा भारत में प्राण का संचार करना है। श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण–महावीर हनुमान आदि के जीवन–चरित्र का अनुशीलन एवं परिशीलन करना है। ऐसी बातें पढ़नी हैं जिनसे छात्रों में प्रबल शक्ति का संचार हो। मुरलीधर कृष्ण की अपेक्षा 'गीता' रूपी सिंहनाद करने वाले श्रीकृष्ण की उपासना करनी चाहिए।[3]

**शिक्षण क गुण**–भारतीय आदर्शवादी परम्परा के अनुसार शिक्षा केवल गुरू मुख से ही प्राप्त की जा सकती है। अन्य किसी भी साधन से प्राप्त शिक्षा को आत्मसात् करने में कठिनाई होती है। अतः गुरू को ऐसे गुणों से युक्त होना चाहिये जिनसे वह शिष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित कर सके। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षक को पूर्ण ज्ञानी होना चाहिये। उसका व्यक्तित्व जीवन पवित्र एवं त्यागमय होना चाहिये। शिक्षक के लिये आवश्यक है कि वह धर्म ग्रन्थों की मूल आत्मा को समझे तथा उसको अपने व्यवहार में लाये, क्योंकि जो अध्यापक कोरे शब्दों से विद्यार्थियों को संतुष्ट करना चाहता है, उसका अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह प्रेम तथा त्याग की भावना से प्रेरित होकर शिक्षण कार्य करें, किसी स्वार्थ की प्राप्ति अथवा यश के लिये नहीं। शिक्षक के लिये यह भी आवश्यक है कि वह अपने विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति रखे और सदैव उनको प्रोत्साहित करे। विवेकानन्द के अनुसार सच्चा शिक्षक वही है जो क्षणभर में अपने को हजारों व्यक्तियों में परिणित कर सके अर्थात् अपने सभी विद्यार्थियों की समस्याओं को देख, सुन और समझकर उनकी आत्मा में प्रवेश कर सके।[4]



**विद्यार्थियों के गुण**–स्वामी विवेकानन्द विद्यार्थियों को आदर्श विद्यार्थी के रूप में देखना चाहते हैं। अतः उनमें वांछनीय गुणों का विकास करना आवश्यक समझते हैं। उनके अनुसार विद्यार्थी के लिये यह आवश्यक है कि वह मन, वचन और कर्म से पवित्र तथा शुद्ध हो। अतः उसे संयमी एवं जितेन्द्रिय होना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसमें परिश्रम तथा अनुशासन की भावनाएँ होनी चाहिये। विद्यार्थी के लिये जिज्ञासु तथा ज्ञान पिपासु होना भी अत्यावश्यक है। इन सबके ऊपर, विद्यार्थी के लिये यह आवश्यक है कि वह गुरू के प्रति श्रद्धा और भक्ति की भावनाएँ रखें। विवेकानन्द का कथन है कि यद्यपि विद्यार्थी को गुरू की पूजा ईश्वर की भाँति करनी चाहिये, किन्तु अंधविश्वासी की भाँति उसे गुरू की सभी बातों को मान नहीं लेना चाहिए, वरन् उसे अपने विवेक से काम लेना चाहिए।[5]

**चरित्र–निर्माण की शिक्षा** – स्वामी विवेकानन्द ने चरित्र–निर्माण को शिक्षा में विशेष महत्त्व प्रदान किया है। स्वामी जी का कथन है कि मनुष्य का चरित्र सुख की अपेक्षा संघर्ष और विपदाओं की स्थितियों में बनता है। उनके अनुसार किसी व्यक्ति के चरित्र की कसौटी उसके महान् कार्य नहीं वरन् दिन–प्रतिदिन किये जाने वाले सामान्य कार्य है। महान् अवसरों पर तो सामान्य व्यक्ति के मन में भी महान् विचार उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु सामान्य अवसरों पर संतुलित बने रहना कठिन है। चरित्र का निर्माण करने के लिये अच्छी आदतों का विकास आवश्यक है, जो शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित एवं उद्घाटित करते हुए कहा है कि भारत की निर्धनता का एक महत्त्वपूर्ण कारण अशिक्षा है। स्वामी जी तत्कालीन शिक्षा–प्रणाली से विशेष दुःखी थे। उनका मन्तव्य था कि उस समय की शिक्षा मनुष्य में कोई गुण उत्पन्न नहीं करती। वह मनुष्य बनाने वाली शिक्षा है ही नहीं। उसमें कोई तत्व की बात दी ही नहीं जाती। उस शिक्षा को स्वामी जी ने निषेधात्मक शिक्षा की संज्ञा दी है। अंग्रेजी शिक्षा–प्रणाली में निषेधों पर विशेष बल दिया जाता था। उसमें हाथ–पैर से काम न करने पर, मातृ भाषा का प्रयोग न करने पर, मौलिकता प्रदर्शित न करने पर बल था। फलतः उसमें मनुष्यत्व के गुणों का विकास नहीं करती है।[6]

**स्त्री शिक्षा** – "सभी उन्नत राष्ट्रों ने स्त्रियों को समुचित सम्मान देकर ही महानता प्राप्त की है। जो देश, जो राष्ट्र स्त्रियों का आदर नहीं करते, वे कभी बड़े नहीं हो पाये हैं और न भविष्य में ही कभी बड़े होंगे। यथार्थ शक्ति–पूजक तो वह है, जो यह जानता है कि ईश्वर विश्व में सर्वव्यापी शक्ति है और जो स्त्रियों में उस

शक्ति का प्रकाश देखता है।"[7] केवल शिक्षा! शिक्षा! शिक्षा! यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूमकर और वहाँ के गरीबों के भी अमन–चैन और शिक्षा को देखकर अपने गरीब देशवासियों की याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अंतर क्यों हुआ? उत्तर में पाया कि शिक्षा से।[8] स्वामी विवेकानन्द नारियों की शक्ति को पुरूषों से किसी भी माने में कम नहीं आँका, इसलिए वे दोनों को समान शिक्षा देने के पक्ष में है। उनका विचार है कि स्त्री और पुरूष एक पक्षी के दो पंख हैं यदि एक कट जाय या निष्क्रिय हो जाय तो पक्षी उड़ान नहीं भर सकता है। वे नारी शिक्षा के विषय में कहते हैं–"हम भारत की आवश्यकता के अनुरूप महान निर्भीक नारियाँ तैयार करेंगे–नारियाँ जो संघमित्रा लीला, अहिल्याबाई, मीराबाई की परम्पराओं को चालू रख सकें–नारियाँ जो वीरों की मातायें होने योग्य हों, इसलिए कि वे पवित्र और आत्मत्यागी हैं और उस शक्ति से शक्तिशाली है जो भगवान् के चरण छूने से आती है।"[9] स्वामी विवेकानन्द नारियों की शक्ति को पुरूषों से किसी भी माने में कम नहीं आँका, इसलिए वे दोनों को समान शिक्षा देने के पक्ष में है। उनका विचार है कि स्त्री और पुरूष एक पक्षी के दो पंख हैं यदि एक कट जाय या निष्क्रिय हो जाय तो पक्षी उड़ान नहीं भर सकता है। वे नारी शिक्षा के विषय में कहते हैं–"हम भारत की आवश्यकता के अनुरूप महान निर्भीक नारियाँ तैयार करेंगे–नारियाँ जो संघमित्रा लीला, अहिल्याबाई, मीराबाई की परम्पराओं को चालू रख सकें– नारियाँ जो वीरों की मातायें होने योग्य हों, इसलिए कि वे पवित्र और आत्मत्यागी हैं और उस शक्ति से शक्तिशाली है जो भगवान् के चरण छूने से आती है।"[10]

अतएव विवेकानन्द के जीवन–दर्शन में ही हमें उनके शिक्षा दर्शन की भी झलक मिलती है और यद्यपि उन्होंने शिक्षा पर विशेष रूप से कोई ग्रंथ नहीं लिखा, तथापि मनुष्य में परम सत्ता के गुणों की खोज करते हुये उन्होंने शिक्षा को 'अन्तर्निहित ज्ञान की पूर्णता की अभिव्यक्ति' बताया है। उनका कथन है कि ज्ञान को खोजने के लिये कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। वह तो व्यक्ति के अन्दर सदैव से विद्यमान है। अतः उसे केवल खोजने और उसका अनुभव करने की आवश्यकता है। नारियों की शिक्षा के लिए वे सदैव तत्पर रहे।



**सन्दर्भ** –


1. स्वामी विवेकानन्द, शिक्षा, (हिन्दी अनुवाद), श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, पृ. 5.
2. स्वामी विवेकानन्द, शिक्षा (हिन्दी अनुवाद), श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, पृ. 4.
3. पाण्डेय, रामशकल, शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ, पृ. 205.
4. स्वामी विवेकानन्द, शिक्षा (हिन्दी अनुवाद), श्री रामकृष्ण आश्रम (नागपुर), पृ. 236.
5. स्वामी विवेकानन्द, शिक्षा (हिन्दी अनुवाद), श्री रामकृष्ण आश्रम (नागपुर), पृ. 22–23.
6. स्वामी विवेकानन्द शिक्षा, (हिन्दी अनुवाद), श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, पृ. 5.
7. किरण, चाँद (2006), शिक्षा दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. 200.
8. विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, भाग –6, पृ. 311.
9. सिंह, ओ.पी. (2008), शिक्षा दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 184.
10. सिंह, ओ.पी. (2008), शिक्षा दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 184.